मुण्डक उपनिषद्

यह उपनिषद अथर्ववेद के अन्तर्गत है। इसमें तीन मुण्डक हैं तथा प्रत्येक मुण्डक में दो–दो खण्ड हैं। कुल 64 मन्त्र हैं। मुण्डक शब्द का भावार्थ "मन का मुण्डन कर अविद्या से मुक्त करने वाला ज्ञान" है। इस उपनिषद में परा और अपरा विद्या समझायी गयी है और अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ब्रह्म प्राप्ति होना बताया गया है।

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठाम् अथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह।।

सम्पूर्ण देवताओं में पहले ब्रह्म उत्पन्न हुए। वे विश्व के रचयिता और त्रिभुवन के रक्षक हैं। उन्होने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को समस्त विद्याओं की आधारभूत ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया।

शौनको ह वै महाशालो अंगिरसं विधिवत् उपसन्नः पप्रच्छ।
कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति।।

ऋषि परम्परा से वह विद्या अंगिरा ऋषि को प्राप्त हुई। शौनक नामक महागृहस्थ ने अंगिरा के पास जाकर विधिवत पूछा – "भगवन! किसके जान लिए जाने पर यह सब कुछ जान लिया जाता है"।

तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।।

अंगिरा ऋषि ने उत्तर दिया – "ब्रह्मवेत्ताओ ने कहा है कि दो विद्यायें जानने योग्य हैं – एक परा और दूसरी अपरा"।

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।।

उनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष – यह अपरा विद्या हैं तथा जिससे उस अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होता है वह परा विद्या है।

यत्तद् अद्रेश्यम् अग्राह्यम् अगोत्रम् अवर्णम् अचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः।।

वह जो देखा न जा सके, पकडा न जा सके, जिसका कोई गोत्र नही है, कोई वर्ण नही है, जिसे आंख–कान व हाथ–पैरों की आवश्यकता नही है, जो नित्य, विभु (विविध–अनेक प्रकार का), सर्वव्यापक, अत्यन्त सूक्ष्म और क्षयरहित है तथा जो सम्पूर्ण भूतों का कारण है, उसे विवेकीजन सब ओर देखते हैं।

यथा उर्णनाभिः सृजते गृहण्ते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथा अक्षरात् संभवतीह विश्वम्।।

जिस प्रकार मकड़ी अपने पेट से जाले को उत्पन्न करती है और फिर अपने भीतर ही निगल लेती है, जैसे पृथ्वी में विभिन्न औषधियां उत्पन्न होती हैं तथा जैसे मनुष्य शरीर से केश और लोम उत्पन्न होते है, उसी प्रकार उस अक्षर ब्रह्म से यह विश्व प्रकट होता है।

तद् एतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यानि अपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि। तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके।।

सूक्ष्मदर्शी ज्ञानियों ने वेदमन्त्रों में जिन कर्मों का दर्शन किया, त्रेतायुग में उन्ही का विविध प्रकार से विस्तार हुआ। हे सत्य की कामना से युक्त व्यक्तियों! अपने कर्मों का श्रेष्ठ फल प्राप्त करने के लिए इस जगत् में यही मार्ग है कि आप सब नित्य ही श्रेष्ठ आचरण करें।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।।

अविद्याग्रस्त रहते हुए भी अपने को अत्यन्त बुद्धिमान तथा पण्डित मानने वाले वे मूढ़ लोग अन्धे के द्वारा ले जाये जाने वाले अन्धों के समान सब ओर भटकते रहते हैं।

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इति् अभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेन आतुराः क्षीणलोकाः चयवन्ते।।

बहुधा अविद्या में ही रहने वाले वे मूर्ख लोग "हम कृतार्थ हो गए हैं" इस प्रकार का अभिमान करते हैं, क्योंकि सकाम कर्म करने वाले कर्मफल में आसक्त होने के कारण तत्त्व ज्ञान नही समझते इसलिए वे दुःखों से व्याकुल होते हैं और स्वर्ग से च्युत हो जाते हैं।

तपः श्रद्धे ये हि उपवसन्ते अरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो हि अव्ययात्मा।।

जो शान्त और विद्वान लोग वन में रहकर भिक्षा वृत्ति का आचरण करते हुए तप और श्रद्धा युक्त जीवन जीते हैं वे पापरहित होकर सूर्य द्वार (उत्तरायण मार्ग) से वहां जाते हैं जहां अमर और अविनाशी ब्रह्म का धाम है।

ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति

तत् एतत् सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकात् विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरुपाः।
तथा अक्षरात् विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैव आपियन्ति।।

वह अक्षर ब्रह्म सत्य है। जिस प्रकार अत्यन्त प्रदीप्त अग्नि से उसी के समान रुप वाली हजारों चिंगारियां निकलती हैं उसी प्रकार, हे सौम्य, उस अक्षर ब्रह्म से अनेक भाव प्रकट होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं।

दिव्यो हि अमूर्तः पुरुषः सबाह्य अभ्यन्तरो हि अजः।
अप्राणो हि अमनाः शुभ्रो हि अक्षरात् परतः परः।।

वह अक्षर ब्रह्म निश्चय ही दिव्य, अमूर्त, अन्दर–बाहर सर्वत्र विद्यमान, अजन्मा, प्राणरहित, मनरहित, विशुद्ध, उज्जवल और प्रकृति से उत्कृष्ट है।

एतस्मात् जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुः ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी।।

इस ब्रह्म से ही प्राण, मन, समस्त इद्रियां उत्पन्न होती हैं इसी से आकाश, वायु, अग्नि, जल एवम् सारे संसार को धारण करने वाली पृथ्वी उत्पन्न होती है।

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्।
एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थि विकिरतीह सोम्य।।

हे सौम्य! यह सारा जगत, कर्म और तप सभी ब्रह्म रुप ही हैं। वह परम तत्त्व अमृत रुप है। उसे जो सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित जानता है वह इस लोक में ही अविद्या की ग्रन्थि को खोल देता है।

आविःसंनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदम् अत्रैतत् समर्पितम्। एजत् प्राणः निमिषच्च यद एतत् जानथ सदसद् वरेण्यं परं विज्ञानाद् यद् वरिष्ठं प्रजानाम्।।

यह ब्रह्म प्रकाश स्वरुप, सबमें व्याप्त, हृदय गुहा में स्थित महान पद वाला है। इस ब्रह्म में चलने वाले, सांस लेने वाले, पलक झपकने वाले सब प्राणी समाविष्ट होते हैं। जो सत्–असत् रुप, वरणीय, जीवों की बुद्धि से परे है उस ब्रह्म को जानों।

यद् अर्चिमद् यद् अणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च।
तद् एतद् अक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः तदेतत् सत्यं तदमृतं तद् वेद्धव्यं सोम्य विद्धि।।

जो दीप्तिमान है, अणु से भी अणु है तथा जिसमें सम्पूर्ण लोक और उनके निवासी स्थित हैं वही यह अक्षर ब्रह्म है, वही प्राण है, वही वाणी है और वही मन है। वही सत्य और अमृत है। हे सौम्य मनन द्वारा उसे जानना चाहिए। अतः तुम उसे जानो।

धनुर्गृहीत्वा उपनिषदं महास्त्रं शरं हि उपासा निशितं संधयीत।
आयम्य तद् भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेव अक्षरं सोम्य विद्धि।।

हे सौम्य उपनिषद रुप महा अस्त्र धनुष लेकर उस पर उपासना द्वारा तीक्ष्ण किया हुआ बाण चढाओ और उसे खींचकर भावों से भरे चित्त से उस अविनाशी ब्रह्म का लक्ष्य भेदन करो।

प्रणवो धनुः शरो हि आत्मा ब्रह्म तत् लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्।।

प्रणव (ओमकार) धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा गया है। उसे आलस्य–प्रमाद रहित मनुष्य ही वेध सकता है। जिस प्रकार बाण लक्ष्य वेध कर उसी में समाहित हो जाता है उसी प्रकार तुम उस ब्रह्म में तन्मय हो जाओ।

यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षं ओतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथ आत्मानं अन्या वाचो विमुन्चथा अमृतस्य ऐष सेतुः।।

जिसमें द्विलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सम्पूर्ण प्राणों के साथ मन ओत–प्रोत है उस एक आत्मा को ही जानो, उससे भिन्न अन्य विषयों को सर्वथा छोड दो। यही अमृत रुप ब्रह्म प्राप्ति का सेतु (साधन) है।

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाडयः स एषः अन्तश्चरते बहुधा जायमानः।
ओम इत्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्।।

रथ चक्र की नाभि में जिस प्रकार अरे लगे होते हैं और जिस प्रकार शरीर की सम्पूर्ण नाड़ियां हृदय में एकत्रित होती हैं उसी प्रकार विभिन्न रुपों में संचार करने वाला यह ब्रह्म हृदय के मध्य स्थित होता है। उस आत्मा का ओम् के उच्चारण द्वारा ध्यान करो। अंधकार (अज्ञान) के पार जाने में तुम्हारा कल्याण हो।

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

उस परब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर जीव की हृदयग्रंथि खुल जाती है, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और उसके सम्पूर्ण कर्म (प्रारब्ध) क्षीण हो जाते हैं।

न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

वहां (उस आत्म स्वरुप ब्रह्म में) न सूर्य प्रकाशित होता है न चन्द्रमा न तारे, वहां यह बिजली भी नहीं चमकती। फिर यह अग्नि किस गिनती में है। उसके प्रकाशित होने से ही सब प्रकाशित होता है और उसका प्रकाश ही इन सबमें चमकता है।

ब्रह्म एव इदम् अमृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतः च उत्तरेण। अधश्च उर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैव इदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।।

यह अमृत ब्रह्म ही आगे है, ब्रह्म ही पीछे है, वही दांयी और बांयी ओर है, वही नीचे और ऊपर है, यह सारा जगत ब्रह्म ही है, वही सर्वश्रेष्ठ है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोः अन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नः अन्यो अभिचाकशीति।।

साथ–साथ रहने वाले तथा सखा भाव वाले, समान अभिव्यक्ति वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष पर रहते हैं। उनमें से एक उस वृक्ष के पिप्पल (कर्मफल) का स्वाद लेता है और दूसरा अनशनपूर्वक (भोग न करके) केवल देखता रहता है।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यति अन्य मीशम् अस्य महिमानं इति वीतशोकः।।

एक ही वृक्ष पर निवास करने वाला जीव मोह में डूबा हुआ दीन स्वभाव के कारण शोक करता है। जब वह योग से प्राप्त ईश्वर और उसकी महिमा (संसार) का बोध प्राप्त कर लेता है तब शोक रहित हो जाता है।

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान्भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः।।

सब भूतों में जो प्राण रुप से प्रकाशित है वह ब्रह्म ही है। जो विद्वान इसे जान लेता है वह अतिवादी (अहंकार युक्त) नहीं होता। वह आत्मा में क्रीड़ा करने वाला और आत्मा में रमण करने वाला क्रियावान व्यक्ति ब्रह्मवेत्ताओं मे श्रेष्ठतम है।

सत्येन लभ्यः तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।।

यह आत्मा सर्वदा सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान और ब्रह्मचर्य द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। जिनके दोष समाप्त हो गये हैं ऐसे योगीजन ही शरीर के अन्दर स्थित ज्योतिष्मान, शुभ्र ब्रह्म को देखते हैं।

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्ति ऋषयो हि आप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्।।

सत्य की ही विजय होती है झूठ की नही। सत्य से ही देवयान मार्ग का विस्तार होता है। जिसके द्वारा आप्त काम (तृष्णा रहित) ऋषि उस पद को प्राप्त होते हैं जो उस सत्य का परम भण्डार है।

बृहच्च तद् दिव्यम् अचिन्त्यरुपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्सु इहैव निहितं गुहायाम्।।

वह ब्रह्म महान, दिव्य और चिंतन से परे है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म रुप में प्रकाशित होता है तथा दूर से भी दूर तथा निकट से भी निकट है। वह सूक्ष्मदृष्टा द्वारा प्रत्येक प्राणी के शरीर के भीतर ह्रदयगुहा में स्थित देखा जाता है।

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैः देवैः तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्ध सत्त्वः ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।।

यह ब्रह्म न नेत्र से ग्रहण किया जाता, न वाणी से, न अन्य इन्द्रियों से और न तप से, न कर्म से। ज्ञान के प्रसाद से विशुद्ध चित्त वाला व्यक्ति ध्यान करने पर उस निष्कल आत्मा का साक्षात्कार करता है।

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्प्राणः पन्चधा संविवेश।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन्विशुद्धे विभवति ऐष आत्मा।।

वह सूक्ष्म आत्मा विशुद्ध ज्ञान द्वारा जानने योग्य है। जिस शरीर में पांच रुपों वाला प्राण प्रविष्ट है और जिसने इन्द्रियों द्वारा सम्पूर्ण प्रजाओं के चित्तों को ओत–प्रोत कर लिया है, उसके शुद्ध हो जाने पर यह आत्मा स्वयं प्रकाशित होने लगता है।

नायमात्त्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।।

यह आत्मा न तो प्रवचन से प्राप्त होता है, न मेधा (धारण शक्ति) से अथवा बहुत श्रवण करने से ही प्राप्त होता है। जो व्यक्ति केवल उस आत्मा की प्राप्ति की इच्छा करता है उसके द्वारा ही इसकी प्राप्ति हो सकती है, उसके लिए यह आत्मा अपने स्वरुप को प्रकट कर देता है।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिन्गात्।
एतैः उपायैः यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम।।

यह आत्मा बलहीन व्यक्ति को प्राप्त नहीं हो सकता और न प्रमादयुक्त व्यक्ति को, और न ही ज्ञानरहित तपस्या से ही प्राप्त हो सकता है। जो विद्वान उपरोक्त उपायों से उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है उसे यह आत्मा ब्रह्म धाम में प्रवेश करा देता है।

संप्राप्यैनं ऋषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति।।

कामना से रहित विशुद्ध अन्तःकरण वाले ऋषि ज्ञान तृप्त होकर परम शान्त हो जाते हैं। वे धीर पुरुष उस सर्वव्यापी, सर्वरुप ब्रह्म को सर्वत्र प्राप्त कर उसी में समाहित चित्त होकर उसी में प्रवेश कर जाते हैं।

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरुपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरुपात् विमुक्तः परात्परं पुरुषं उपैति दिव्यम्।।

जिस प्रकार निरन्तर बहती हुई नदियां अपने नाम–रुप को त्यागकर समुद्र में विलीन हो जाती है उसी प्रकार विद्वान नाम–रुप से मुक्त होकर उस दिव्य पुरुष को प्राप्त हो जाते हैं।

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति ना अस्या ब्रह्मवित्कुले भवति। तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति।।

जो विद्वान उस पर ब्रह्म को जान लेता है वह ब्रह्म ही हो जाता है। उसके कुल में कोई ज्ञानरहित नही होता। वह शोक और पाप को पार कर लेता है और हृदयग्रंथियों (आन्तरिक विकारों) से मुक्त होकर अमृत्व प्राप्त कर लेता है।